B.A. (Hon's) I

Paper - 1st

Topic - Vaisheshika 'Abhava'

प्रश्न:- वैशेषिक दर्शन के 'अभाव पदार्थ' की व्याख्या करें।

उत्तर:- वैशेषिक दर्शन के प्रणेता कणाद ऋषि ने मौलिक सत्ताओं को एक से अधिक बतलाया है। इसलिए इस दर्शन में आत्मा 'वास्तविकता' का वर्णन 'अनेकवाद' के सिद्धान्त के द्वारा किया है। यहाँ मूलसत्ताओं की संख्या सात तक बताई गयी है। इसलिए अब प्रश्न यह उठा कि उन सातों सत्ताओं को किसी एक नाम से पुकारना चाहिए इसलिए वैशेषिक दर्शन में 'पदार्थ' शब्द का प्रयोग किया गया। इसलिए वैशेषिक-दर्शन में 'पदार्थ' का एक बहुत ही बड़ा महत्व है। 'पदार्थ' शब्द की उत्पत्ति पद + अर्थ से हुई है। जिसे 'पद' का कुछ अर्थ हो उसे ही 'पदार्थ' कहते हैं। इसलिए 'पदार्थ' शब्द का अर्थ बहुत ही व्यापक है जिसके भीतर संसार की सभी वास्तविक वस्तुएँ चली आती हैं। इसीलिए तो कणाद ऋषि ने मौलिक सत्ता या मूल तत्वों का वर्णन 'पदार्थ' शब्द की व्याख्या से किया है।

'पदार्थ' शब्द की व्याख्या के बाद अब स्वभावतः प्रश्न उठता है कि वैशेषिक दर्शन में 'अभाव पदार्थ' का क्या अर्थ है? वैशेषिक दर्शन की जो प्रारंभिक अवस्था है अर्थात् कणाद ऋषि के द्वारा 'पदार्थ' की संख्या छः बताई गयी है - द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय। परन्तु कणाद के बाद के भाष्यकारों तथा टीकाकारों ने उन छः तरह के पदार्थों के साथ एक और नया पदार्थ 'अभाव' जोड़ दिया, जिससे पदार्थ की संख्या सात तक हो गयी। इसे ही वैशेषिक दर्शन के 'सात पदार्थ' के नाम से पुकारते हैं। कणाद ऋषि के छः पदार्थ को 'भाव पदार्थ' के नाम से जानते हैं तथा सातवां पदार्थ 'अभाव' को अभाव पदार्थ के नाम से जानते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि इनमें प्रथम छः पदार्थ भावात्मक हैं और सबसे अंतिम पदार्थ अभाव निषेधात्मक है। 'अभाव पदार्थ' की मान्यता कणाद ऋषि के सूत्रों में नहीं पाई जाती है। अतः कणाद ऋषि के अनुसार केवल छः पदार्थ ही वास्तविक हैं। सातवें पदार्थ 'अभाव' को इन्होंने एक पदार्थ के रूप में नहीं माना है। लेकिन बाद के शिष्यों एवं भाष्यकारों ने 'अभाव' का वर्णन एक स्वतंत्र पदार्थ के रूप में किया है।

अब प्रश्न उठता है कि अभाव क्या है? अभाव एक ऐसा पदार्थ है, जिसका रूप भले ही अभावात्मक दिखलाई पड़ता है। परन्तु उसके अस्तित्व पर किसी तरह का संदेह नहीं किया जा सकता है। अभाव का ज्ञान सभी लोगों को होता है। व्यावहारिक जीवन में इस तरह की बातें हमें बहुत ही देखने को मिलती हैं, जिसमें 'अभाव' के अस्तित्व स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ते हैं। जैसे - 'टेबुल' पर कलम का नहीं होना, एक 'अभाव' है। लेकिन वहाँ पुस्तक का होना एक वास्तविक ज्ञान है। उसी प्रकार टेबुल पर कलम का नहीं होना वास्तविक ज्ञान है। इसलिए 'अभाव' का अस्तित्व किसी भाव वाले पदार्थों से कम स्पष्ट

Scanned with CamScanner

नहीं है। 'अभाव' का ज्ञान तो सामान्यतः सबों को होता ही रहता है। वैशेषिक दर्शन में प्रशस्तपाद का नाम 'अभाव' की व्याख्या के लिए बहुत ही महत्व रूप में आता है। प्रशस्तपाद भाष्य वैशेषिक-दर्शन का एक प्रामाणिक ग्रन्थ है। उस भाष्य 'अभाव' की व्याख्या बिल्कुल ही पूर्ण रूप में की गई है। इसीलिए कणाद महर्षि के द्वारा बताये गए पदार्थों के साथ 'अभाव' का नाम सातवें पदार्थ के रूप में जोड़ दिया जाता है।

अब स्वभावतः प्रश्न उठता है कि वैशेषिक दर्शन में 'अभाव' को एक स्वतंत्र पदार्थ के रूप में स्वीकार करने का क्या कारण है? प्रशस्त भाष्य में 'अभाव' की व्याख्या एक अलग पदार्थ के रूप में करने के निम्नलिखित कारण हैं- (i) अभाव का ज्ञान बिल्कुल ही प्रत्यक्ष रूप में हो जाया करता है। 'रात के समय आकाश में सूरज नहीं रहते हैं' - यह वाक्य उसी तरह वास्तविक है जिस तरह कि यह वाक्य 'आकाश में रात के समय तारे या चाँद रहते हैं'। अगर तारे या चाँद का होना सत्य है, तो सूरज का नहीं होना (अभाव) भी उसी तरह सत्य है। अतः अभाव को एक अलग पदार्थ के रूप में स्वीकार करना आवश्यक है।

(ii) 'पदार्थ' का शाब्दिक अर्थ है- 'पद + अर्थ' अर्थात जिसकी शाब्दिक अभिव्यक्ति सम्भव हो। 'अभाव' को हम शब्दों के माध्यम से व्यक्त करते रहते हैं। जैसे आलमारी में किताब का अभाव देखकर इसे शब्दों के माध्यम से व्यक्त कर देते हैं। इसलिए अभाव को एक अलग पदार्थ मानना बिल्कुल ही स्वाभाविक है।

(iii) 'अभाव' का ज्ञान हमें प्रत्यक्ष के द्वारा होता है। जैसे - जाड़े में गर्मी एवं लू का अभाव हमें प्रत्यक्ष रूप से जाना जाता है। अतः अभाव के ज्ञान का आधार प्रत्यक्ष ही है। प्रत्यक्ष के लिए दूसरे प्रमाण की जरूरत नहीं पड़ती है। अतः अभाव को एक स्वतंत्र पदार्थ मानना युक्तिसंगत है।

कुछ लोग यह आपत्ति करते हैं कि जब 'अभाव' से हम किसी वस्तु का 'नहीं होना' जानते हैं तो फिर उसका प्रत्यक्ष कैसे हो सकता है। प्रत्यक्ष के लिए तीन तत्वों का होना आवश्यक है - ज्ञाता, ज्ञेय तथा सन्निकर्ष। किसी एक के नहीं रहने पर प्रत्यक्ष ज्ञान हो ही नहीं सकता है। इसलिए 'अभाव' का ज्ञान हमें प्रत्यक्ष के द्वारा नहीं हो सकता है, क्योंकि जो वस्तु स्वयं ही अनुपस्थित है उसके साथ ज्ञानेन्द्रिय के सम्पर्क का सवाल ही नहीं उत्पन्न होता है। वैशेषिक दर्शन भी इस बात से सहमत है कि 'अभाव' का प्रत्यक्ष भावात्मक वस्तु की तरह नहीं हो सकता परन्तु अभाव का ज्ञान भी तात्कालिक होता है। इसलिए एक विशेष दृष्टिकोण से इस तरह का ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान ही कहलाएगा।

Scanned with CamScanner

(iv) वैशेषिक दर्शन अनित्य वस्तुओं की सत्ता में विश्वास रखता है। परिवर्तनशील एवं अनित्य वस्तुओं की व्याख्या 'अभाव' के बिना नहीं हो सकती। 'अभाव' को न मानने पर विश्व की सभी वस्तुएँ नित्य हो जाएँगी, जो वैशेषिक को मान्य नहीं है। इसलिए 'अभाव' को स्वतंत्र पदार्थ के रूप में मानना आवश्यक है।

(v) वैशेषिक दर्शन 'बाह्य संबंध' में आस्था रखता है। बाह्य संबंध की व्याख्या 'अभाव' को पदार्थ के रूप में ग्रहण किए बिना संभव नहीं है। दो पदार्थों या वस्तुओं में जब बाह्य संबंध स्थापित होता है, तब उससे पहले पता चलता है कि कभी इनमें इस संबंध का अभाव था और भविष्य में भी इस संबंध का कभी 'अभाव' होगा। इस प्रकार बाह्य संबंध की व्याख्या के लिए 'अभाव' को एक स्वतंत्र पदार्थ मानना पड़ता है।

(vi) मोक्ष की व्याख्या के लिए 'अभाव' को स्वतंत्र पदार्थ मानना अनिवार्य है। मोक्ष का अर्थ है 'दुःखों का पूर्ण अभाव'। यदि अभाव को स्वतंत्र पदार्थ नहीं माना जाए तो फिर मोक्ष का कोई अर्थ नहीं होगा। दुःखों का अभाव मानने पर ही मोक्ष सार्थक कहा जा सकता है।

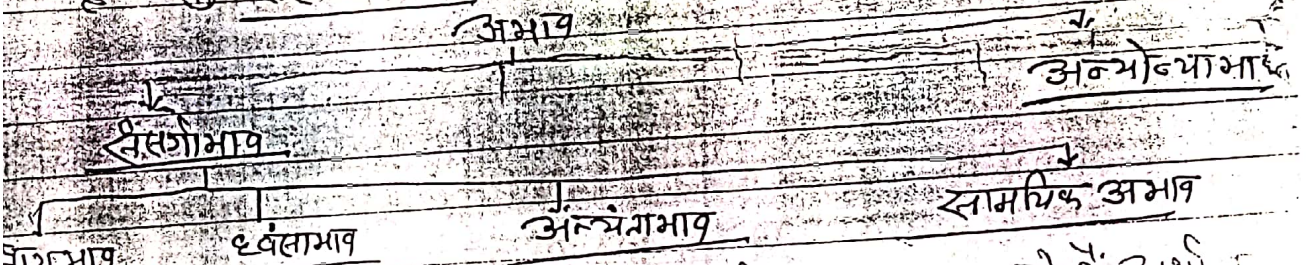

वैशेषिक दर्शन में अभाव के दो भेद बतलाए गये हैं — (A) संसर्गाभाव और (B) अन्योन्याभाव

- अभाव
  - संसर्गाभाव
    - प्रागभाव
    - ध्वंसाभाव
    - अत्यन्ताभाव
    - सामयिक अभाव
  - अन्योन्याभाव

(i) संसर्गाभाव — इस तरह के अभाव को संसर्ग का अभाव कहते हैं अर्थात् एक वस्तु का दूसरी वस्तु में अभाव कह सकते हैं इस तरह के अभाव को हम एक वस्तु का दूसरी वस्तु में अभाव कहते हैं जैसे — पत्थर में तरलता का अभाव या आग में शीतलता का अभाव इत्यादि। संसर्गाभाव के चार प्रकार हैं — (i) प्रागभाव (ii) ध्वंसाभाव (iii) अत्यन्ताभाव (iv) सामयिक अभाव।

(i) प्रागभाव (Non-existence as antecedent) इस तरह का अभाव उसे कहते हैं जो किसी वस्तु के पैदा होने के पहले एक पूर्ववर्ती के रूप में पाया जाता है। घड़ा की उत्पत्ति मिट्टी से होती है। कोई कुम्हार मिट्टी की सहायता से घड़े का निर्माण करता है। घड़ा बनाने के पहले मिट्टी के लोंदे में या मिट्टी में जो घड़े का अभाव रहता है, उसे 'प्रागभाव' कहते हैं। यह अभाव यही बतलाता है कि भौतिक कारणों में कार्य का अभाव रहता है। इस तरह के अभाव का [illegible] अनादि रहता है। मिट्टी में कब से घड़े का अभाव है, यह हम नहीं जानते। इस तरह के अभाव का अन्त [illegible] हो जाता है।

(ii) ध्वंसाभाव (Non-existence after destruction) - इस तरह का अभाव नाश होने पर पैदा होता है, इसलिए प्रशस्तपाद-भाष्य में कहा गया है - किस

9. आचार्य ... कहा है कि, "यदि प्रागभाव को न माना जाए, तो सभी वस्तुएँ अनादि हो जाएँगी। यदि ध्वंसाभाव को न माना जाए, तो सभी वस्तुएँ अनंत हो जाएँगी। यदि अन्योन्याभाव को न माना जाए, तो सभी वस्तुएँ परस्पर अभिन्न होंगी। यदि अत्यन्ताभाव न हो, तो सभी वस्तुओं का अस्तित्व सब काल में सर्वत्र हो जाएगा।"

उत्पन्न कार्य-द्रव्य के नष्ट हो जाने पर फिर जो उसका अभाव हो जाता है, उसे 'ध्वंसाभाव' कहते हैं। उदाहरणस्वरूप जो घड़ा बनाकर हमारे सामने रखा रहता है वह कभी भी फूट सकता है। जब घड़ा फूट कर टुकड़े-टुकड़े हो जाता है, तो वह घड़ा फिर नहीं कहलाता है। उस स्थिति में वहाँ पर जो घड़े का अभाव रहता है, उसे ध्वंसाभाव कहते हैं। इस अभाव का कभी भी अन्त नहीं हो सकता है, क्योंकि टूटे घड़े के टुकड़ों से घड़ा का निर्माण कैसे हो सकता है? इसलिए ध्वंसाभाव को 'अनन्त' कहा गया है। इसका प्रारंभ या आदि हमें ज्ञात रहता है।

कुछ लोग इस पर आपत्ति प्रकट करते हुए कहते हैं कि टुकड़ों को जोड़कर घड़ा को फिर से कुछ देर के लिए बनाया जा सकता है। इसलिए इस अभाव का अन्त हो सकता है। इसके उत्तर में वैशेषिक दर्शन का कहना है कि टुकड़ों को जोड़कर उस घड़े का निर्माण नहीं किया जा सकता है। यदि टुकड़ों को जोड़कर घड़ा बना भी लिया जाएगा तो वह पहले से भिन्न होकर अपना एक अलग नया रूप लेगा।

(iii) **अत्यन्ताभाव** (non-existence as absolute) वैशेषिक दर्शन का कहना है कि - दो वस्तुओं में भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों काल के संबंध के अभाव को अत्यन्ताभाव कहते हैं। जैसे - वायु में रूप का अभाव। इस तरह का अभाव ऊपर में बताए दोनों अभावों से अलग होता है। प्रागभाव जन्म से पहले पूर्ववर्ती होता है और ध्वंसाभाव विनाश के अनन्तर कालिक। अत्यन्ताभाव किसी काल विशेष से संबंधित नहीं रहता। यह तो सब काल में एक समान बना रहता है। यह शाश्वत है। अत्यन्ताभाव का आदि और अन्त दोनों ही अज्ञात रहता है। इसलिए अत्यन्ताभाव का ~~आदि~~ अनादि और अनन्त दोनों होता है।

(iv) **सामयिक अभाव** - जो अभाव कुछ ही समय के लिए हो, उसे 'सामयिक अभाव' कहते हैं। उदाहरणस्वरूप - मान लें कि अभी वर्ग में विद्यार्थी नहीं है। यहाँ वर्ग के विद्यार्थी का अभाव (जो कुछ देर के लिए है) सामयिक अभाव है।

(B) **अन्योन्याभाव** - अन्योन्याभाव का शाब्दिक अर्थ होता है, दो वस्तुओं की भिन्नता। जब एक वस्तु दूसरी वस्तु से भिन्न होती है, तो उसका अर्थ है कि पहली वस्तु में दूसरी वस्तु के रूप में अभाव है और दूसरी वस्तु का पहली के रूप में। उदाहरणस्वरूप - घड़ा कपड़े से भिन्न है। इसलिए घड़े का अभाव कपड़े में है और कपड़े का अभाव घड़े में है। इस तरह के अभाव में संसर्ग या दो वस्तुओं के संबंध का अभाव नहीं रहता है। इसलिए यह संसर्गाभाव से अलग माना जाता है, क्योंकि अन्योन्याभाव का अर्थ होता है एक वस्तु का दूसरी वस्तु में अभाव अर्थात् तादात्म्य संबंध के अभाव को अन्योन्याभाव कहते हैं।

अतः उपर्युक्त विवेचनों के आधार पर यह निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि वैशेषिक दर्शन में सातवें पदार्थ के रूप में अभाव ...

Scanned with CamScanner